भारतीय दर्शन के माध्यम से पर्यावरण संबंधी जागरुकता

श्रुति परमार | दर्शनशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, बिहार। ईमेल : shrutip400@gmail.com

भारत की दार्शनिक विचारधारा में पर्यावरण को जड़ न मानकर क्रियाशील एवं जुड़ी हुई व्यवस्था माना जाता है, जहां मानव अन्य प्राणियों के साथ मिलकर रहते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय संस्कृति के अनुसार प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित नैतिक मूल्यों के अंतर्गत ही पर्यावरण को संजोकर उसका संरक्षण किया जाता है। भारतीय दर्शनशास्त्र में प्रकृति के अस्तित्व को पवित्र तथा पूजनीय समझा जाता है। हम यदि आधुनिक जीवन शैली को देखें तो इस अन्तर्दृष्टि से हमें अधिक स्थायी और सामंजस्यपूर्ण जीवन का मार्ग दिखने लगता है।

हाल के अध्ययन में वर्ष 2024 के पहले नौ महीनों के दौरान मौसम के अत्यधिक उतार-चढ़ाव पर चिन्ता व्यक्त की गई है जिनके प्रभाव से तीन हजार से ज्यादा लोगों की मृत्यु हुई तथा आधारभूत ढांचे और कृषि क्षेत्र को जबरदस्त नुकसान झेलना पड़ा। रिपोर्ट में पता चलता है कि इस अवधि के 93 प्रतिशत दिनों में मौसम अपने चरम पर रहा तथा मध्यप्रदेश में सबसे ज्यादा घटनाएं रिकॉर्ड की गईं और केरल में सबसे ज्यादा लोगों ने जानें गंवाई। 2024 में जलवायु के बारे में रिकॉर्ड बन चुके हैं, इस वर्ष जनवरी का महीना 1901 के बाद का सबसे शुष्क महीना रहा तथा इस महीने में तापमान भी अभूतपूर्व रूप से ज्यादा रहा। रिपोर्ट में आपदा प्रबंधन का स्तर बढ़ाने की तुरंत आवश्यकता पर बल दिया गया और उच्च उत्सर्जन से जलवायु के बचाए रखने को कहा गया।

पर्यावरणीय संकटों के इस दौर में पर्यावरण के प्रति जागरूक बनने की इतनी ज्यादा आवश्यकता कभी महसूस नहीं की गई। पर्यावरण के प्रति जागरुकता अर्थात् मानव गतिविधियों और पर्यावरण के बीच अन्तर-संबंधों के बारे में जागरुकता से व्यक्तियों और समुदायों को टिकाऊ उपाय अपनाने के लिए प्रोत्साहित

किया जाता है। भारतीय दर्शन अपनी समृद्ध परम्परा और विचारों के आधार पर पर्यावरण-जागरुकता को बढ़ावा देकर गहरी पैठ विकसित करने में मदद करता है, जिसमें सभी जीवों और प्राणियों के परस्पर संबंधों और प्रकृति के प्रति मानव के नैतिक दायित्वों पर जोर दिया जाता है।

दार्शनिक आधार

भारतीय दर्शन की विचारधारा में पर्यावरण को जड़ न मानकर क्रियाशील और परस्पर जुड़ी हुई व्यवस्था माना गया है, जिसमें मानव सभी अन्य प्राणियों और जीवों के संग मिलकर रहते हैं। इस दृष्टिकोण से समग्र प्राकृत जगत को समझने और इससे संबंध स्थापित करने की सोच को बल मिलता है, जिसमें स्वयं को परिस्थितियों के अनुरूप ढालने को प्राथमिकता दी जाती है तथा मानव-अमानव संबंधों का सिद्धान्त अपनाने को ही जीवन-आधार माना जाता है। प्राचीन भारतीय दार्शनिकों ने पर्यावरण की कोमल प्रकृति को जान-समझकर पर्यावरण संरक्षण को मनुष्य का मूल दायित्व बताया है। मौखिक और लिखित दोनों परम्पराओं में समूचे ब्रह्मांड को मूल इकाई माना गया है। जहां मौखिक परम्पराओं अर्थात् श्रुतियों में व्यावहारिक प्रयोग को केंद्र बिंदु माना जाता है वहीं ग्रंथों में ब्रह्मांड का व्यापक और सुव्यवस्थित विश्लेषण दिया गया है।

भारतीय ग्रन्थों के अनुसार अन्य भौतिक पदार्थों की भांति ही मानव भी कुछ तत्वों के मेल से निर्मित है और मृत्यु के बाद इन सभी तत्वों का विखंडन हो जाता है। ये नौ तत्व हैं - पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, अग्नि, समय, दिशाएं, मस्तिष्क और मृदा। भारतीय पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार ये तत्व चरणबद्ध तरीके से इस क्रम में बनकर विकसित होते हैं; सबसे पहले जल, पृथ्वी और आकाश का अस्तित्व बनता है, फिर जलचर प्राणी और पक्षी उत्पन्न होते हैं तथा इसके बाद में भूमि, वायु/पवन होते हैं और अंत में अग्नि प्रकट होती है। भारतीय दर्शन में पर्यावरण को ऐसी अनूठी देन माना गया है जिसमें जैविक और अजैविक दोनों स्वरूपों मे जीवन रहता है। परस्पर निर्भरता सर्वोपरि सिद्धान्त है जिसमें अकेला-अस्तित्व संभव नहीं है तथा पर्यावरण को उदार-करुणामय अस्तित्व माना जाता है।

भारत में पर्यावरण-संबंधी नैतिकता का ऐतिहासिक संदर्भ

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो भारतीय संस्कृति में प्राचीन ग्रन्थों और संतों के उपदेशों में गहरे नैतिक मूल्यों पर आधारित व्यवस्था के माध्यम से पर्यावरण सुरक्षा और संरक्षण की परम्परा रही है। दैनिक जीवन में अपनाए जा रहे इन सिद्धान्तों से ही सामान्य लोगों और शासकों के कार्य प्रभावित होते थे। पर्यावरण से जुड़े छोटे से छोटे मुद्दों के भी प्रभावी समाधान खोजे जाते थे। भारतीय इतिहास के प्राचीन और मध्यकालीन दौर में भी प्रकृति में गहन आस्था के साथ पूज्य भाव रखा जाता था। पर्यावरण से जुड़े नैतिक मूल्य केवल सिद्धान्त मात्र ही नहीं थे बल्कि ये दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में पूरी निष्ठा से शामिल किए जाते थे तथा जनता और शासकों के कर्म भी इनसे प्रभावित होते थे। विभिन्न दार्शनिक पद्धतियों और आध्यात्मिक गुरुओं ने जीवन का सुदृढ़ आधार विकसित करने हेतु पर्यावरण के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध विकसित करने की सीख दी।

तीसरी शताब्दी के स्तम्भों और शिलालेखों में अशोक काल के राज्यादेशों (शासनादेशों) में पर्यावरण के प्रति भारत की जागरुकता के प्रारंभिक-ऐतिहासिक साक्ष्य मिलते हैं। सार्वजनिक स्थानों और तीर्थ-स्थलों पर लगे इन अभिलेखों में हरे वृक्षों के काटने की मनाही तथा दोषियों को दंडित करने की व्यवस्था भी लिखी है। इससे वनों की कटाई और पर्यावरण के प्रदूषण तथा बीमारियों के बीच आपसी संबंध को समझने और उनका पालन करने का भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। बिहार के रामपुरवा में मिले 243 बीसीई के राज्यादेश संख्या 5 में पर्यावरण संरक्षण हेतु की गई मनाही को विस्तार से समझाया गया है जो पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से प्रारंभिक ऐतिहासिक रिकॉर्ड माना जा सकता है।

तीसरी शताब्दी का राज्यादेश इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें संरक्षण नीतियों पर पहले भी जोर दिया गया था। इसमें संरक्षित प्रजातियों की सूची दी गई है और उनकी हत्या (संहार) करने या अन्य प्रकार से हानि पहुंचाने पर निषेध किया गया है। साथ ही, इसमें वन संरक्षण को बढ़ावा तथा मानव अस्तित्व में वनों के महत्व पर बल दिया गया है। मछलियों के बारे में इस राज्यादेश के तहत लिखी निषेधाज्ञा का उद्देश्य संभवतः प्रजनन काल में उनकी सुरक्षा करना था। उस कालखंड में संरक्षण को इतना महत्व देना वाकई असाधारण लगता है।

प्रकृति से पावन संबंध

भारतीय दर्शनशास्त्र में प्रकृति का संसाधनों के लिए दोहन करना ही एकमात्र उद्देश्य नहीं माना गया बल्कि इसे पूज्यनीय पावन-पवित्र व्यवस्था बताया गया है। भारत के प्राचीनतम ग्रंथ वेद हैं जिनमें वर्णित वैश्विक विचारधारा में प्राकृतिक जगत को ईश्वर से अभिन्न माना गया है। इस दृष्टिकोण में पर्यावरण के प्रति दायित्व की भावना को अपनाने पर बल दिया गया है तथा सभी से प्रकृति के साथ समन्वय एवं सामंजस्य बनाए रखने का आग्रह किया गया है।

वृक्ष और उनका देवी-देवताओं से संबंध :

अशोक (सराका असोका) - बुद्ध, इन्द्र, विष्णु, अदिति आदि।

पीपल (फाइकस रिलीजियोसा) - भगवान विष्णु, देवी लक्ष्मी, देवी वन दुर्गा आदि।

तुलसी (ओकिमम टेन्युइफ्लोरम) - भगवान विष्णु, भगवान कृष्ण, भगवान जगन्नाथ, देवी लक्ष्मी आदि।

कदम्ब (निओला मारक्केइया कदम्बा) - भगवान कृष्ण।

बेर (जिज़िफस मौरिटियाना) - भगवान शिव, देवी दुर्गा, भगवान सूर्य, देवी लक्ष्मी।

वट (फाइकस बेंघालेंसिस) - भगवान ब्रह्मा, भगवान विष्णु, भगवान शिव, भगवान काल (यम देव), भगवान कुबेर, भगवान कृष्ण आदि।

पाश्चात्य परम्पराओं में अक्सर मानव-केंद्रित विचारधारा के आधार पर प्रकृति को मूलतः मानव उपयोग का संसाधन माना जाता है क्योंकि वे अमानव अस्तित्वों को जरा भी नैतिक महत्व नहीं देते। लेकिन पश्चिमी विचारधारा में भी एक अल्पसंख्यक वर्ग, जिसे नेतृत्व परंपरा कहा जाता है, पृथ्वी का पूरे दायित्व से ध्यान रखने और उसकी सार-संभाल करने को देवों या ईश्वर के प्रति दायित्व मानता है।

भारतीय दर्शन में अवतारवाद के माध्यम से अमानव जगत का भी महत्व स्वीकार किया गया है तथा पशुओं और पेड़-पौधों में भी मानव जैसे गुण होने की धारणा व्यक्त की गई है। पशुपति महादेव सरीखी पूजा-पद्धति और पंचतंत्र की कहानियों में वर्णित नैतिक मूल्यों के द्वारा यही तथ्य सामने आता है क्योंकि उन कथाओं में पशुओं में भी मानवीय व्यवहार बताकर नैतिक उद्धरण दिए गए हैं। गायों और वृक्षों का पूजन और देवी-देवताओं का पशुओं के साथ सहचर्य भी भारतीय संस्कृति में हर प्रकार के जीवों के सूक्ष्म महत्व को दर्शाता है।

भारतीय दर्शन उन प्राचीन ग्रन्थों के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है जो मानवता और प्रकृति के बीच सद्भाव को विशेष महत्व देते हैं। इस धारणा के अनुसार मानव प्राकृतिक जगत से भिन्न नहीं अपितु उसी का अभिन्न अंग है। सृष्टि की भावना में भी यही धारणा निहित है जिसमें ब्रह्मांड को ऐसी जीवित व्यवस्था माना गया है जिसमें जड़ और चेतन सभी प्राणी संबंधों के जटिल चक्र में उलझे-बंधे रहते हैं। इस विचार के अनुसार जड़ तत्वों में भी आत्मा होती है और यही विचार पर्यावरण के प्रति सम्मान और नमन के भावों को जगाता है।

प्रकृति के साथ सामंजस्य एवं सद्भाव रखकर जीने की बौद्ध विचारशैली से भी हमें प्रेरणा मिलती है। बौद्धों का सभी जीवधारियों के प्रति प्रेम और सम्मान का भाव पर्यावरण संरक्षण के मार्ग की ओर संकेत करता है। हिमालय पार के इलाकों में रहने वाले साधु-संन्यासी हिम तेंदुओं के शिकार और उन्हें पकड़ कर ले जाने पर रोक लगाने में मदद करते हैं क्योंकि यह एकदम लुप्तप्राय जाति है। जैन धर्म में भी पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा दिया जाता है, उनका कहना है- ''आप भी वही है जिसे आप मारने या हानि पहुंचाने का प्रयास कर रहे हैं।'' जैन धर्म में सभी प्राणियों को समान माना जाता है तथा छोटे-बड़े या निम्न-श्रेष्ठ सभी को बराबर समझा जाता है। उनका मानना है कि सभी पशुओं, पेड़-पौधों और मनुष्यों में आत्मा है इसलिए उन सभी का समान आदर किया जाना चाहिए।

सांख्य दर्शन पुरुष (दृष्टा) और प्रकृति (प्रकृति) की धारणा मानता है जिसके अनुसार वास्तविक समझ और सद्भाव आत्मानुभूति से ही प्राप्त हो सकते हैं। योग परंपरा इसी विचार को और आगे बढ़ाते हुए प्रकृति के साथ गहन संबंध विकसित करने और सभी लोगों को प्राकृतिक जगत के साथ समन्वय रखते हुए जीने के लिए प्रोत्साहित करती है।

उपनिषद् भारतीय दर्शन के मूल ग्रंथ हैं जिनमें अंतर-संबंधों के आइने से मानव और पर्यावरण के संबंधों की विवेचना की गई है। इन उपनिषदों के अनुसार पांच मूल तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ही जीवन के मुख्य आधार हैं जो मानव अस्तित्व को ब्रह्मांड से जोड़ते हैं। छांदोग्य उपनिषद् कहता है- ''पृथ्वी सभी प्राणियों का आधार तत्व है।'' इस प्रकार मानव और प्राकृत जगत

के बीच आंतरिक और अंतरतम संबंधों का वर्णन किया गया है। समग्र दृष्टिकोण से देखने पर ऐसी जीवनचर्या को प्रोत्साहन मिलता है जो पर्यावरण का दोहन करने की बजाय पर्यावरण के संरक्षण और उसके सम्मान को बल प्रदान करें।

पर्यावरण जागरुकता के नैतिक आयाम

भारतीय दार्शनिक परम्पराओं में अन्य प्रजातियों के प्रति नैतिक आचरण और दायित्व भाव रखने पर बल दिया गया है। प्रकृति के साथ मानव के संबंधों के दोहरे आयामों-भौतिक और आध्यात्मिक संबंधों के माध्यम से पर्यावरण को हानि पहुंचाने से रोकने के उपायों के महत्व पर बल दिया गया है। यह नैतिक व्यवस्था अहिंसा और करुणा जैसे सिद्धान्तों पर आधारित है जिनमें सभी जीवधारियों के प्रति सम्मानपूर्वक व्यवहार रखने को प्राथमिकता दी जाती है।

प्राचीन भारतीय शास्त्रों में दीर्घकाल से ही पर्यावरण संरक्षण के महत्व पर जोर दिया गया है और इसी विषय से इतिहास के दौरान अनेक महान लेखकों को प्रेरणा प्राप्त हुई है। इनमें कालिदास रचित नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसकी पात्र शकुन्तला प्रकृति के साथ घनिष्ठ संबंधों को चित्रित करती है और प्रकृति को पालनकर्ता मां के रूप में देखती है। उसके हावभाव एवं कार्यशैली पर्यावरण के साथ सद्भावपूर्ण सहअस्तित्व को परिलक्षित करते हैं, वह हर पेड़-पौधे के प्रति लगाव दिखाती है, यहां तक कि स्वयं पानी पीकर प्यास बुझाने से पहले वह उन्हें पानी देती है।

'धर्म' या कर्त्तव्य की अवधारणा की भारतीय दर्शनशास्त्र में पर्यावरण-जागरुकता को आकार देने में बहुत अहम भूमिका है। इससे लोगों को पर्यावरण के प्रति अपने दायित्व निभाने की प्रेरणा मिलती है। उन्हें पता चलता है कि उनके कार्यों से सभी जीवधारी प्रभावित होते हैं। इस नैतिक व्यवस्था से दीर्घकालिक पद्धतियां अपनाने की प्रेरणा प्राप्त होती है और लोगों से आग्रह किया जाता है कि वे अपने चुने हुए विकल्पों के कारण पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभावों पर अवश्य विचार करें।

'कर्म' की अवधारणा में मानव कार्यों के परिणामों पर बल दिया जाता है और पर्यावरण जागरुकता की आवश्यकता पर भी जोर दिया जाता है। हिन्दू लोग पृथ्वी के अस्तित्व को पावन-पवित्र मानते हैं और यह भी मानते हैं कि प्रदूषण और वनों की कटाई जैसे कार्यों से ब्रह्मांड का संतुलन बिगड़ता है क्योंकि ये नकारात्मक कर्म है। भारत की स्वदेशी संस्कृतियों में गहरी पर्यावरण-जागरुकता निहित है जिसके तहत प्रकृति को जीवन्त अस्तित्व माना जाता है न कि ऐसी वस्तु जिस पर अपना नियंत्रण बनाया जा सके। यह दृष्टिकोण सभी में आत्मा देखने की धारणा के अनुरूप है जिसमें प्राकृत जगत के सभी तत्वों में आध्यात्मिक अनुभूति निरुपित की जाती है। इन संस्कृतियों की सीखें वैदिक परम्परा के अनुरूप हैं जिसमें पर्यावरण के प्रति शांति, सद्भाव और दायित्व रखने पर बल दिया जाता है।

निष्कर्ष

आधुनिक जीवन की जटिलताओं को झेलने में भारतीय दर्शन की अंतर्दृष्टि अधिक टिकाऊ और संतुलित अस्तित्व की ओर ले जा सकती है। अंतर-संबंध, नैतिक दायित्व और सभी जीवों के प्रति आदरभाव सिर्फ दार्शनिक आदर्श नहीं; ये हमारे पृथ्वी के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक भी हैं। वर्तमान समाज में इस प्राचीन ज्ञान को पुनः जाग्रत करके इसे हमारे आधुनिक जीवन में समाविष्ट करना ही बड़ी चुनौती है। पर्यावरणीय और सामाजिक संकट मनुष्य और प्रकृति का संबंध क्षीण होने पर ही आते हैं। इनसे निपटने के लिए हमें अपने पर्यावरण को पुनर्जीवित करना होगा और यह भी मानना होगा कि हमारा कल्याण पृथ्वी ग्रह के स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ है। पर्यावरण के प्रति जागरुकता बढ़ाने के लिए जरूरी है कि हम स्वयं को और अन्य सभी को भारत की विभिन्न ज्ञान पद्धतियों की समृद्ध परम्परा से अवगत कराएं। इन शिक्षाओं को अपनाकर और इन्हें अपने दैनिक जीवन में समाहित करके ही हम प्रकृति का आदर-सम्मान करने और भावी पीढ़ियों के लिए उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित करने वाली संस्कृति स्थापित कर सकते हैं। ❑

(लेख में व्यक्त किये गये विचार लेखक के निजी हैं।)

संदर्भ

1. Annual report: Centre for Science and Environment (CSE) and Down To Earth
2. For a more detailed discussion of Asokan inscriptions, see Mookerji 1942
3. Srimad Bhagwatm.
4. Gairola, S U (2020). Review article on relation between Hinduism and environment - A Vedic approach. Asian Journal of Environment & Ecology. 13(3), 19-25DOI: 10.9734/AJEE/2020/v13i330183.
5. Okafor, J O, & Osim, S., Ph.D. (2018). Hinduism and Ecology: Its Relevance and Importance. FAHSANU Journal: Journal of the Arts/Humanities.
6. Renugadevi, R. (2012). Environmental ethics in the Hindu Vedas and Puranas in India. African Journal of History and Culture (AJHC), 4(1), 1-3. DOI: 10.5897/AJHC11.04
7. Vernekar, S D P (2008). Sacred Nature: A Hindu Approach to Environment. Journal of Dharma, 33(2), 205-212.
8. Hasnat, G T, Md Alamgir Kabir, and Md Akhter Hossain. "Major environmental issues and problems of South Asia, particularly Bangladesh." *Handbook of environmental materials management* 1 (2018).
9. Gadgil, Madhav, and Ramachandra Guha. *This fissured land: an ecological history of India*. Univ of california Press, 1993.
10. Krishna, Nanditha. *Hinduism and nature*. Penguin Random House India Private Limited, 2017.